प्रेक्षागृह का शून्य

(कविताएँ)

राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर के
आर्थिक सहयोग से प्रकाशित

प्रेक्षागृह का शून्य

साधना चौधरी

राष्ट्रीय सेल्स एजेन्सीज
9 बी सहकार नगर 'सी', शिल्प कॉलोनी, झोटवाड़ा
जयपुर–302012

साधना चौधरी

मूल्य : पचास रुपये मात्र

प्रकाशक : राष्ट्रीय सेल्स एजेन्सीज
9, बी सहकार नगर 'सी', शिल्प कॉलोनी झोटवाड़ा, जयपुर

मुद्रक : शीतल प्रिन्टर्स, चन्दलाई भवन, जयपुर-302003

संस्करण : प्रथम, 1992

प्रेक्षागृह का शून्य : साधना चौधरी

PREKSHA GRAH KA SOONYE : POEMS BY SADHANA CHAUDHRY
Rs. 50

"यही वह कविता होनी चाहिये जिसकी तलाश हम करते हैं : तेजाब की तरह हाथों के भार से घिसी, पसीने और धुएं में भीगी, बेला और पेशाब की गंध लिए, उन देशों के विभिन्न रंगों से रंगी जिनसे हम जीवन-यापन करते हैं, कानून के अन्दर या बाहर। ऐसी कविता जो हमारे पहने गये कपड़ों की तरह अशुद्ध हो, दाल के धब्बों लगे, लज्जाजनक आचरण से गंदे हमारे शरीरों की तरह, हमारी झुरियां और रतजगो और सपनों, निरीक्षणों और भविष्यवाणियों प्यार और नफरत की घोषणाओं, दृश्यावलियों और पशुओं, मुठभेड़ के धक्कों, राजनीतिक प्रतिबद्धताओं, इन्कारों और सन्देहों, समर्थनों और करों की तरह अशुद्ध हो।"

—पाब्लो नेरूदा

अनुक्रमांक

□

बन्द मुट्ठी

जेठमास का सूरज
आग ही उगलेगा
अब
ये तुम पर निर्भर है
कि
तुम कितनी आग पचा सकते हो
क्योंकि
बंद मुट्ठी की सख्ती
तुम्हारी पचाई आग पर
निर्भर है ।

पहचान

जिसे तुमने देखा
उनमें "मैं" नहीं था

वे थीं,

चमड़ीं से ढकी आकृतियां
जो धूप में सफेद पसीना

बहा बहा कर

काली हो गई थीं
तुम अपनी उजली धवली कार में
सर्र....................से निकल गए थे

मेरे कालेपन पर...........
मुँह बिचका कर

क्योंकि तुम
प्रकाश के एक भी रंग को

नहीं सोख पाए थे
झुलसी चमड़ी को

उधेड़ कर जरा देखो
मैंने प्रकाश के सात रंगों को

सोख लिया है।

सन्नाटे की चीख

हृदय कुण्ड में खौलता विद्रोह अब शान्त है
चाहो तो देख सकते हो
ठण्डी भाप उसके चेहरे पर
बर्फ की चादर उसकी आंखों में
क्योंकि, देह का सारा ताप
उसकी हथेलियों में सिमट आया है
कठिन है बहुत समय तक अलग अलग रखना
बंदी देह और मुक्त मन को
वैसे ही जैसे कि मन में खदबदाते विद्रोह की आग
और खपरैल तले का चूल्हा........
दोनों की आंच, एक साथ नहीं सुलग सकती
मुक्ति दिवस की झलक उसके चेहरे पर
तलाशना चाहते हो..........
या एकता का अर्थ उसकी आंखों में पाना चाहते हो
............तुम बढ़ा सकते हो
खपरैल तले के चूल्हे का अवधि काल
हटा सकते हो
कोने में धरी चाकी पर फैला मकड़ी का जाल
नहीं...................
तो मत बात करो
मुक्ति दिवस की
तिरंगी चादर में लिपटी
किसी एकता की खण्डित देह की
जो घूम जाती हैं

एक थके हुए पहिए के चारों ओर
तथाकथित हर मुक्ति दिवस पर
...............पर इसकी बात क करना
यह भी कम पीड़ा दायक नहीं
तो...............तो जंग जारी रखो
चूल्हे की आंच की और मन के ताप की

भूख

लकड़ी... गोबर बीनते-बीनते

एक दिन वह........

ट्रक की चपेट में आ मर गई

कुछ सूखी लकड़ियां
इधर उधर बिखरी थी.....

गोबर अब भी मुट्ठी में बन्द था
फटी .. लाल किनारी की धोती में
डेढ़ रोटी बंधी थी

बथुआ का साग

कमीज की जेब में ठुसा था
सड़क वैसी ही

साफ और सूखी थी

आश्चर्य...........
बुढ़िया का खून
ईंधन....साग और रोटी
सिर्फ इन पर ही लगा था

एक प्रश्न

देव !
तुम सिर्फ प्रश्न ही रहे
उत्तर मैंने जब भी चाहा
किताब के सभी पृष्ठ
खाली थे.. ....
यहां तक कि
मुख पृष्ठ पर छपा
तुम्हारा नाम भी
मेरे देखते देखते
अर्थहीन हो गया... ....
ऐसा होना तो नहीं चाहिए था
तुम्हारे नाम की हत्या भी तो
मुझे पीड़ा देती है
हां....................
ऐसा तब हुआ
जब मेरी दारूण विपत्तियों के साथ
भूख का दैत्य भी मिल गया
इसके बाद........ ....
नींद चौंककर कई बार जागती है
रात में कई बार चीखती है
इस आर्त्तनाद को

तुम्हारे बहरे कान सुन नहीं पाते
और..................
सिर्फ तुम्हारे नाम को
बनाये रखने के लिए
मैं भूख के दैत्य से
लड़ना छोड़..........
उसका निवाला बन जाऊँ
ये मुझसे होता नहीं...........

रोटी

कभी कभी
बेमानी लगने लगता है
यह चिन्तन भी
जिसे, अक्सर जीवन की
परिभाषा कह दिया जाता है
खासकर............तब
जब, डालते हो तुम
भूख के कटोरे में रोटी
और, भूख के मिटने से पहले ही
रोटी सूरज बन जाती है
तब, चिन्तन की किरणें
सूरज की आग में मिल
आग ही उगलती है ।

एक सोच

जब मेरे बाजू कटे नहीं थे
तब
तेरे होने, न होने पर
मैं संदिग्ध थी
मेरी खोज के
किसी निर्णय पर
पहुँचने से पूर्व........
मेरे बाजू कट चुके थे
....

अब मेरे चारों तरफ
सिर्फ भय....और.......भय........है
और....... ....
तुम्हें सरजनहार
यह भय ही तो है।

प्रेक्षागृह का शून्य

न वो देवा राम था
न वो रहीमा
जब पहली बार दाई के हाथों
धरती की सौंधी गंध रोया था
उसमें
अनंत की प्यास लिए
मातृत्व की छाया में
एक तश्नालब सोया था
यों लोथ में सांस चल पड़ना
अपरिहार्य हकीकत है
लेकिन आदमी बनके
आदमी सोखना
आदमी के बौने में
कद्दावर होने की विरासत है
आदमी की आदमी को गुहार देना
संकेत है कि
अभी इसकी रगों में
सोखने के लिए
खून अवशेष है
बा उसूल डारविन
हर चाह लबरेज है
इससे तो बेहतर

बेनाम सांस के व्यापारी को ही
आवाज दें
मुख्तलिफ आवाजें
जो अपने लिबास उतारकर
एक ही प्रेक्षागृह में
पहुँच जाती हैं........
जहाँ शब्द की पहचान शून्य हो जाती है।
लेकिन लोग
ध्वनि को नहीं पहचानते
लिबास को पहचानते हैं
और ऐसा हर लिबास
भेड़का खोल होता है
ये भूल जाते हैं कि
इस खोल में भेड़िया छुपा रहता है
बाज वक्त उसे ही सामने लाते है
और जुनून की भाषा में
ध्वनि का प्रतीक मानते है........
रहीमा तहेपैबन्दख्वाब अंगेज था
कि रूई धुनने की दुकान जल गई
देवाराम को रिक्शा निचोड़ रहा था
कि झोंपड़ी उजड़ गई
श्रीराम कुरेशी का
तेरे मेरे विवाद में खून हो गया
खून और आंसू..........
आंसू और खून
भौतिकी रसायनशाला के परीक्षण में

पता नहीं लग सका
कि ये
अमुक के आंसू हैं
अमुक का खून
ये फलां की आस्था है........
फलां का ईमान
केवल इतना ही पता लगा
कि कहीं कोई रोई है
मजलूम आंख
कहीं कोई कत्ल हुआ है
बेगुनाह इंसान !

औरत–एक

तुम्हारे सामने
जो, लाश पड़ी है
अभी इसे फूंकों मत
थोड़ी देर बाद
यह, जिन्दा हो जायेगी
चलेगी....फिरेगी....मुस्कराएगी
जानते नहीं.......
यह लाश औरत की है
जिसके खून में मिले
अमीबा पैरासाइट की खूबियों को
पुरुष ने खत्म नहीं होने दिया
तभी तो
यह हर बार,
अपने कत्ल होने की पीड़ा भूल
फिर....फिर....जीवित हो जाती है

अस्तित्व की पहचान

पुरुषत्व के अवकाश पर
तारे सी तुम
क्यों दीखती हो ?
कब तक दीखती रहोगी ?
तुम्हारी किरणों से आलोकित
यह
आकाश
आ का श
तुम्हारे बिना............
कितना भदरंग सूना और सपाट
हो जाता है
तुम माथे की मुकुट मणि की तरह
दमकती चमकती
उसकी पहचान बन जाती हो
और तुम्हारी पहचान
उसके अस्तित्व का बौनापन ढंक लेती है
यह कैसी विडम्बना है
कि
तुम्हारा अस्तित्व ही तुम्हारे लिए
भार बन गया है
और
उसके लिए अलंकार

क्या इस अलंकरण को
पुच्छल तारा नहीं बना सकतीं
पुच्छलतारा.......... हां
जो निकलता है तो
अस्तित्व का प्रमाण सा
आकाश की
छाती को चीरता हुआ
पृथ्वी पर
हड़कम्प बन जाता है

भोर, हत्या के बाद

बाखर की मुंडेर पर बोलता
काला काग
अब किसी के आने का सगुन
नहीं हो सकता
....

कि स्वप्न में देखी
दो पायी विचित्र मादा पशु
अपनी गुरगुराहट
देहरी पर उड़ेल रही है
और उसकी....... ....
बनैली आँख
बंधी बछिया की
गर्दन तोल रही है
सहमी बछिया कातर निगाहों से
उसकी छाती से लगे
चार सींग वाले नन्हें पशु को
दूध पीते
देख रही है............
कि बाखर में बन्द
अ के ली
बूढ़ी अम्मा ने
गगरी उठाई है पानी भरने को

श्रौर सहम गई हैं
चिड़ियों की चिंचियाहट के साथ
बछिया का श्राहत रंभाना सुनकर
....

हत्या के बाद की
इस श्रजीब भोर पर
झुर्रियों में गढ़ गया है
एक प्रश्न...........
ये गुरगुराहट इस श्रन्तिम
सहारे को भी लील जायेगी ?
....

बूढ़ी श्रम्मा ने सहसा
खोल दिया है
द्वार
श्रौर
सहलाने लगी है
श्रपनी खुरदरी चौड़ी हथेली मे
तमाम लाशों को
श्रांखों से पीने लगी है
श्रपने लड़कों के कटे सिर
बहुश्रों की नंगी जांघें
बेटियों की चिथड़ा छाती
बच्चों की दबी कसी गर्दनें
श्रौर बाबा की
बछिया से मिलती जुलती श्रांखें
खुले द्वार से उसने

देखा...............

ये गुरगुराहट तो

सिर से पांव तक गली हुई है

भयकर मवाद भरी बू

पेट के तहखाने में

जमी हुई है

श्रौ   र

गुरगुराहट में मिला

पूरे जिस्म से चिपका वह शब्द

जड़ता.......................

जड़ता.......................

ज   ड़   ता

एक क्षण को

सहमा गया है

रस्सी तुड़ाने को

श्रातुर बछिया

जैसे जड़ता

लांघ गयी है

श्रौर श्रब

श्रम्मा

सोच रही है

किसके श्राने का सगुन है ये.... ....

आज तक

कुछ भेड़िए................
बकरियों की खाल ओढ़
उन्हीं के झुण्ड में मिल गए
बकरियों की घटती संख्या पे
वे भी रोष में चिल्लाते हैं
और................
बकरियां................
वे आज तक
अपना कातिल ढूंढ रही हैं.... ....

गौरैया हैरान है

प्रिय ! रात मैंने एक
सपना देखा... ....
कि
मेरे आंगन में एक बरगद सहसा उठ खड़ा हुआ है
और मेरी तुलसी जैसे सुट्ट हो गई हो
कि
मेरे उदास छज्जे के तिकोन पर
एक गौरैया का जोड़ा
तिनके चुन चुन कर
घोंसला बनाते बनाते थक गया
बरगद की हवा का झोंका
उसके हर तिनके के पैर उखाड़ देता है
घर के बनते बिगड़ते खेल पर गौरैया हैरान है
कि—
टिटहरी ने चीख चीख कर भर दिया है
आकाश
वह एक पल नहीं सोई
बरगद
गौरैया
और छज्जे पर
मनहूसी छा गई है
और

मैं खुद तुम्हारे रक्त चाप को
ठण्डे हाथों से सहलाने लगी हूं
कि
बिल्ली तुम्हारे ग्रौर मेरे बीच ग्राई
ग्रौर निकल कर मुंडेर पर बैठ गई
कि—
खिड़की की किनोर पर रखी
मेरी सिन्दूर डिबिया में एक मकोड़ा
गिरा ग्रौर निकल भागा........
उसके भागते पैरों ने जमीन पर
लिखदी है एक इबारत
जिसे मैं पढ़ूं तो पढ़ नहीं सकती
कि—
बूढ़े बरगद को हसी ग्रा गई
मेरे पैरे मुझे बरगद तक ले गए
मैंने हाथ जोड़े........पूछा
बाबा ! हंसते क्यों हो
बूढ़ा बरगद फिर हंस दिया
मैंने फिर पूछा
बाबा क्यों हंसते हो ?
बाबा के लम्बे लम्बे मजबूत हाथ उठे
कान खड़े हुए
भवें तनी ग्रौर उसका
उदर
इधर उधर डोल गया
पूरा ग्रस्तित्व जैसे चौकन्ना हो गया
मैं डर गई !
तुम मरे पास
नहीं थे !

सूरज को भड़का दिया

अभी बसन्त है
फागुनी गीतों का महीना
न बर्फ का न लू का महीना
मैं गीत गाऊँ
....

झोंपड़ियों का फूस
भक से जल गया है
लोग चिल्ला उठे हैं
तुमने फागुनी गीत गाकर
सूरज को भड़का दिया
और—
जेठमास की गठरियां
झोंपड़ी छोड़
उनके सिरों पर लद गईं

आत्महत्या से पहले

एक पल

रुको.......

और सोचो

कि—

जिन अंतड़ियों की

लम्बाई से

घबरा गये हो

राजधानी में

            पकते

            महीन चावलों की

भ.......ू.......ख

ही तो पोसी रही है

अब   तक

कुसूर तुम्हारा है

कि अब तक

हवा के रुख की ही तरह

            मुड़ रहा है

हवा... ...के रुख के खिलाफ

पाँव.......उठाओ

बहुत

            छोटी है

कठिनाइयों की लम्बाई

महज
दो वक्त
ताजा रोटी मांगती
इन्हें सम्मोहित करती
महक से
      बचो
उस तामझामी
बावर्ची खाने तक
पहुँचो...........
            और
            ले आओ
सड़क पर
उस महीन चावल के
विशाल पतीले को

किसुनिया और बकरियां

सुबह झुण्ड बनाकर
    किसी एक हम सूरत के पीछे
    निकल जाती हैं
बकरियां
    चारागाह में
हरियाली की नरम पत्तियां कहां.......
कंटीले झाड़ों पे टंके
    पत्तियों के निशान
    खाती हैं वे
उनके पीछे डंडा लिये
चलता है किसुनिया
सूने
आ का श
को देखता
अपने बापू की पनहइयों में
    पांव डालता
    कभी ठोकर से
    उछालता
जिन्हें वह अभी पहनना नहीं सीखा
जितनी बार पनहइयों का
मुंह खुलता है

किसुनिया बापू के हाथों
इतनी ही देर ठुकता है

न सही पनहइयां
थिगली घिसा घुटन्ना तो हो

किसुनिया........किसुनिया है
बापू की तरह बिजूका नहीं
कल फिर आयेगा
नंगे पांव............
म्हारी मंगेतर नखरां वाली....गाता
बकरियों के रेवड़ के साथ
एक दो मेमनों को
कंधों पर लादे........
और बकरियां
नहीं जानती
कि
उनके ही कुछ जाये
कुछ उनके ही संग के
या वे खुद ही
कभी भी हो सकती हैं
कसाई के ठीहे और तने हुए
गंड़ास के बीच
अब
ये कैसे हो सकता है कि
जिन मेमनों से किसुनिया खेला है
उनके जाने पर, उदास न हो
क्योंकि

किसुनिया....तो किसुनिया है न !
बापू की तरह बिजूका नहीं
पर
किसुनिया उदास होता है
कुछ पल
शायद
वह जानता है
रोटी और मिर्च की
जिस पोटली को
बगल में दबाये आता है
वह
बकरियों के
आंच पर सीझने से ही
मिलती है ।

बिना गोश्त की हड्डियों का गीत

जगल में
जैसे पेड़ उगते हैं—
हम भी
वैसे ही उपजे हैं
इससे पहले
हमारी मांए भीं
ऐसे ही उपजी थी
और अब.......
हमारे बच्चे भी.......
आंधी
चौमासा
सूरज की आग
और ठंड
हमने सही है
इनका
असर भी नहीं होता हम पर
हमारे
ठस्स घिसे नाखूनों का
माटी जैसा रंग.......
पांवों की सुन्न बिवाई....
और सूरज को अपने ऊपर

झुनझुनासा टांगे टाट के झूले में सोता
हमारा बच्चा
हमारी औरतें कहती हैं........
हमारा खून गर्म है
(उन्हीं के लिए)
और हमारी लात
उन पर ही चलती है
वैसे...........
बात तो सच है
विना गोश्त की हड्डियां हम
जब...........
उकड़ू वैठेंगी
अपने ही पेट में........
चुभेंगी
आंधी
चौमासा
सूरज की आग
और ठंड
हम सह सकते हैं
पर उकड़ू बैठकर
पेट में ये हड्डियों की चुभन
अब सहन नहीं होती........
हमारी औरतें भी
यही कहती हैं........

सुसिद्धि

पहले
....उन्होंने
आकाश में
कुछ चमचमाते शब्द फेंके
समाजवाद, भाई चारा
धर्मनिरपेक्षता, सत्य में निष्ठा
फिर संसद पहुँचकर
गीत गाये
कल कल....छल छल
बहती नदियों के
सुन्दर पहाड़ी झरनों के
तपस्या और ऋषियों के
लहलहाती फसलों के
यानी हर तरह से सुन्दर
अपना
"भारत महान"
शब्दों की चमचमाहट
तन मन लील गई
पेटों में....खाली
धधकते चूल्हे लिये लोगों के
और उनकी आँखें
आकाश में तिरते
सुसिद्धि अलंकरण से चुंधिया गई।
संसद में गीत
अब भी वही है !

दूसरी आजादी

अथाह रूदन को
पसलियों के पीछे
ठेलते

उसने जाना कि
दूसरी आजादी
टीक दुपहरी सी

गर्दन पर सवार है
और वह
तीन बन्दरों की खाल ओढ़े
चौराहे पर जिन्दा है
रीढ़ को हड्डी को
अपने जवड़ों में

फंसाये लोग
वहां...............
गुलाब के फूल चढ़ाते हैं
और
सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा....

गाते हैं...............
उस तीखी धूप से
निकल कर

एक प्रश्न...............
    मेरी गर्दन में धंसता है
कि
देह से चूते
    पसीने का खारापन
सम्मोहन का अंधापन पीते
चालीस साल से भी पुराने नकाब को
कब गला पाएगा ।।

दवे बाजू

एक चमकीला शब्द
    जनतंत्र
जबसे
    हर भुरभुरी दीवार पर
    फेंका गया है
तभी से
    उसकी आँखें
    भारी....आरामदेह कुर्सी तले
    ....दवे, सिर्फ अपने बाजुओं को
        देखती हैं ।
    इस तरह
        लकवा गया है
        उसका दिमाग....
इस बीच
    सफेद कालर पे टकी
    कुटिल आँखों ने
जंगल राज की खूनी इबारत
उसके जिस्म में उतार दी है
त्याग और सेवा की
        राख से
        धूनी रमाया वह आदमी

इस तरह
एक प्रजातंत्र रचता है
कि
बाजुओं पे नजर टिकाये
आदमी के पेट में
धंसा छुरा............
स्वत: ही उसके भाई के
पेट में
उतरता है !

प्रेक्षागृह का दृश्य

बकरी

तुमने कुर्सी ली
    मेरी आवाज बनाकर
    मुझसे गले मिले
मेरी खाल ओढ़कर
आ
  श
    च
      र्यं
कुर्सी के मोर्चे से
तुम्हारा पहला निशान
क्या हम ही थे ?

परिचय

रात को
उसकी छाती अग्नि कुण्ड
बन जाती है
जिसमें
वह बहुत सी आहुतियां
दिया करता है
आग को रात भर
जलाये रखता है
....

सपनों के खरगोश
आकाश के पंछी
सब एक एक आकर इसमें गिरते हैं
तड़पते हैं....मरते हैं
....

उस राख को वहीं छोड़
जब वह जुटा होता है
सर से पांव तक बिखेर
पेट को समेटने में
तब
चुटकी भर राख उड़कर
अनायास आ मिलती है
मेरी
कलम की स्याही में !

तुमसे जुड़ा दर्द

जब, मैं और तुम
साथ—साथ थे
कुछ बीज अनायास
ऊपर से टपके
और
चारों तरफ बिखर गये
... .

वह सुख का अट्टहास था
उनके गिरने की आवाज
उस अट्टहास में एकाकार हो गई
उनके अस्तित्व से अनभिज्ञ
हम हंसते ही रहे........
....

तुम्हारे जाने के बाद
मैं सात तालों में
बन्द हो गई
तुमसे जुड़े दर्द के घेरे में
सिमट गई
....

समय के साथ साथ
वे बीज, नुकीले होते गये
इतने नुकीले............

कि वे सात दरवाजों को छेदकर
मुझ तक पहुंच गये
....

उनके चुभन की पीड़ा
निश्चय ही
असहनीय थी
और............
बचने का एक ही
उपाय !!
....

अब
मेरा मांस गीली मिट्टी है
पीड़ा का हर बीज
मेरी सन्तान !
सोचती हूँ
क्या तुमसे जुड़ा
दर्द........
इतना ही छोटा था ?

बनते शब्दों को मिटा
खाली पन्ना थमा जाता है
मुझे............
मेरे दर्द को
शब्दों में बांधोगे
जैसे... तू
अट्टहास कर उठता है
सात समन्दर पार बैठा
तेरा कातिल...........
अपना पुतला छोड़ गया है
तेरे सन्तोष के लिए
हृदय की चटखन
शब्दों से नहीं
भर पाएंगी
तुझे जो चाहिये
नहीं दे पाएगी
ये शब्द
मेरा स्वार्थ है
मेरे दर्द को बौना बनाने का
प्रयास हैं।

लेकिन................
जमीन बनना आसान नहीं
संवेदना को जन्म देने के लिए
असहनीय पीड़ा
पहले झेलनी पड़ती है
आसान
उत्सव मनाना है
आओ
उत्सव मनाएं
क्या हुआ............
जहरीले धुएं ने
कुछ उगते अंकुरों पर
जलते अंगार रख दिए
थोड़ा सा जहर
नदी कुएं में थूक दिया
थोड़े से पेड़ों को बांझ
कर दिया
या
कुछ हजार मर गए
और............
अन्धे विकलांग हो गए
संवेनना से देश नहीं चला करते
सत्ता की हथेली पर, गला फेफड़ा नहीं
चांदी का वृक्ष जरूरी है
आओ उत्सव मनाएं
लाशों पर नाचकर
देश हित के लिए
क्योंकि नियति ऐसे हो तो
छिटकाई जा सकती है !

पंजों के नाखून
तोड़े जाते हैं
या वे कितनों के जिस्म में
अभी नाखून
गढ़ाते हैं
वैसे................
निर्दोष बहते खून में
उगी
हैरानी की अनगिनत आंखें
हमारे आग बने जिस्म पर
चिपक गई हैं
हम................
कब तक रूक सकते हैं ?

जब वे
अधिक तनती हैं
तो उंगलियां स्वत: ही
कलाई की ओर
मुड़ती है।
और
वो हो सकती हैं
आक्रोश में बन्द मुट्ठी
या
तना हुआ मुक्का
इमारत की आखिरी मंजिल
पर चिपकी
तुम्हारी नाक पर
तब
धूप की कोई किरच
पहुँच ही जाती है
देह सीखचों को छेदती
मन की सीलन सोखने !

समझौते के बाद—एक

घुटनों पे रखा सिर........
डूबता सूरज........
फैलती आंखें........
शिथिल देह... ....
विद्रोही प्राण ऊंघता है....
और आंख
पूर्णिमां के चांद को देखती हैं
....
अमावस का चांद भी
अंधियारी रात में
अनुभव सा
        गुजर जाता है
आंखों में
        जिन्दा है
                प्रश्नचिन्ह
और
घायल अस्तित्व पीड़ा सा
....
एक आक्रोश पनपता है
सूरज के प्रति........
पृथ्वी के प्रति
या
स्वयं चांद के प्रति

समझौता

वह...........
खड़ा था द्वार पर
अपने जबड़ों में फंसी
रोटियों को उगलता
ठंडे लोहे के
तीखे पंजों पर, घूमता
दौड़ रहे थे

कई यंत्र मानव
उन्हें पाने के लिए
एक चक्र में

मैंने.........—
अपनी पीठ और पेट को
देखा...........

एकाकार !

दम तोड़ती जिजीविशा
फिर चैतन्य हो गई !
बहुत मुश्किल था

यंत्र मानव बनना !

जब मेरे पांव
उस दौड़ में शामिल हो गये

किरच किरच मन

दर्पण में उभरा
किरच किरच मन
....

लकवाया आक्रोश
गीली होती आंख
प्यार की बूंद के,
तड़के मन की दरारों में
समा जाने पर
....

जरूरतें
जो बन्द हैं
मजबूत दुर्ग में
दरवाजे पर हैं
आदमखाल में भेड़िए
चन्द टुच्ची सुविधाएं फेंककर
तुम्हें पालतू बनाते
अपनी छाया का सम्मोहन बिछाते
....

तुम्हारे भीतर
उग जाता है
एक सूरज
और, गहरा जाती है

किरच किरच मन

दर्पण में उभरा
किरच किरच मन
...., ...

लकवाया आक्रोश
गीली होती आंख
प्यार की बूंद के,
तड़के मन की दरारों में
समा जाने पर
....

जरूरतें
जो बन्द हैं
मजबूत दुर्ग में
दरवाजे पर हैं
आदमखाल में भेड़िए
चन्द टुच्ची सुविधाएं फेंककर
तुम्हें पालतू बनाते
अपनी छाया का सम्मोहन बिछाते
....

तुम्हारे भीतर
उग जाता है
एक सूरज
और, गहरा जाती है

उसकी छाया

---- ....

प्रश्न एक ही
खोलता सा
छटपटाता है
जिस्म की सर्द
        शिराओं में
दर्पण
तुम अब तक
क्यों न टूटे

उसका आंगन

मेरे छोटे से आंगन में आ गिरी
घायल चिड़िया........
चील की गिरफ्त से छूटी
मैंने दौड़कर उठा लिया........
लहू से उखड़े
नुचे पंख
बिखर गये....इधर उधर
मरती आंखों की वेदना
मुझे सिहरा गई
चील मंडराती रही
आकाश में
उसके आंगन में
देखती हूँ....नहीं मानव आकृतियां
उनकी आंखों की वेदना
चिड़िया से
कितनी मिलती जुलती है
होटल
कारखानों
दुकानों की
चीलों से खौफ खाई हुई
लेकिन मैं,
निर्लिप्त रहती हूँ
मेरे आंगन में
घायल चिड़िया
कभी कभी गिरती है
और उसके आंगन में
यह रोज की बात है........

इन्द्र धनुष टंका रहा

देहात का बेटा
नगर में खो गया
चिलचिलाती........
धूप पीकर
इन्द्र धनुष
टंका रहा
आकाश में
पगडंडी की धूल
पसीने में लिपटकर
पथरोली सड़क पे
........झर गई
गोया........
बिखरा हो
देहात के
बेटे का अस्तित्व
मां की आंख से
चूल्हे की आंच में !

आदम प्यास

पसलियों के भीतर
पहले,
फुफकारता रहा
सर्प.... .. ....
पसलियों के बाहर रखी
प्रकाश मणि के लिए
और
मरगया
लहू लुहान होकर
पसलियों पे
फन ...पटक पटक कर
छोड़ गया
रेंगता नन्हा सपोला
क्योंकि
प्रकाश मणि
आकांक्षा थी उसकी
और वह स्वयं
आदम प्यास
आदिम से चली

बच्चा और इन्द्रधनुष

जब तुम यों यकायक
आ खड़े होते हो
मेरे सामने
व्यवस्था के किसी
पन्ने से निकला
दम घोंट धुंआ
बन्द कोठरी में
छा जाता है, तुम्हारे और मेरे आस पास
मेरे शरीर से निकला
काला धुंआ
तुम्हारे शरीर के
सफेद धुंए में
घुल मिल जाता है
एक....तीसरा रंग देता
चेहरे भर उठते हैं
नफरत और आक्रोश से
वे नहीं सह पाते
उनके....एक दूसरे में घुलते
अस्तित्व को
व्यवस्था के हक में
और.......
बच्चा
तब, देख रहा होता है
खिड़की खोलकर
आकाश पे टंके
इन्द्र धनुष को !

यथार्थ

सूरज
रात भर चिपका रहा
सोती हुई छाती पे
....
पूर्णिमा का चांद
सुबह, आ चिपका चेहरे से
सूरज को उठान पे
हालांकि, सांझ होते ही
सूरज को छिपना था
सीने में
और चांद को हंसना था
आकाश में
पीकर....सूरज की प्रताड़ना
चांद का दुःख
बड़ा था
बहुत....बड़ा
मैंने चांद को देखा
अमावस की रात
अपने यथार्थ में

एक क्रम अनवरत

वह विशाल सा पेड़ !
              उससे जुड़े
              तने .. टहनियां
पत्तियों से लदबद....
एक युग बीत गया
अंग अग झकझोर गया
तू
      फा
            न
पतझर में गिरी सूखी पत्तियों पे
बेरहम पांवों की खड़खड़ाहट
बसन्त........भांप गया
और
      फिर न लौटा
अकेला पेड़, ठूंठ
              बना
निर्द्वन्द सहता रहा
आंधी........
मेह........
सूखा........
ठड........स्तब्ध सा !
एक युग और बीता

कोई काट ले गया
उस ठूंठ को
बन गया
खूबसूरत पिंजरा
उस दिन
रात भर बरसात हुई
जैसे
युग युग से संचित
आंसू झरे हों
विशाल पेड़ के
सुबह
फूटा था वहां
एक नया अंकुर
एक क्रम अनवरत
मिलन....विछोह
छांव....धूप
संघर्ष .. भूख
और विवशता में
सना...........

औरत–दो

चार दीवारी से घिरा
चौक
चौक की एक दिवार में
दुबका चौका
थाली पे झुकी
कुछ बीनती औरत
चूल्हे की आंच मे
घुटती... सीली लकड़ियां
औरत को छूकर
उठता धुंआ
तीन दीवारों पे चिपके
प्रहरी पुरुष चित्र
प्रकृति से तौलते
जंगल के नियम से
प्रभावित !
क्षुब्ध होती औरत
जंगल के नियम से
क्योंकि
रिश्ता नहीं टूटता
थाली और उसका
सहसा........
सुलग उठती हैं लकड़ियां !

मिथक

बहती नदिया का...........
फैले बरगद का...........
नम भावों का...........
बतियाती चौपाल का
मिथक
लटका है मेरे कन्धे से
कि
बूढ़ा गंगाराम
चुप हो गया
कथा........कहते कहते
एक खौफ फंस गया
राजा के जुल्म का
उसकी
धंसी आंखों में
नदी का तट सूख गया
बरगद डगमगा गया
भाव.......पथरा गए
और,
जवान गंगाराम की कथा
लोक कथा बन
गठरी सी
अब भी चिपकी है
मेरी पीठ से

भूख–दो

चेहरे की झुर्री में
सो गया अवसाद
थक कर !
छाती पे चिपकी जोंक
गिर गई
रक्त पीकर !
सन्नाटा गहरा गया
पीकर अंधेरा
बिवाइयों पे
रेंगती रही, अलसाई जोंक
एक रोटी
रात....भर
सिकती रही
बुझते
अंगारों पे !

भूख–तीन

मैंने सांझ बस्ती से
धुंआ उठता देखा
क्या...............
चूल्हे ही जले थे
या
सुलगा था उनका अस्तित्व
दो प्रश्न
समानान्तर चलते रहे
रात
रोने की आवाज
फिर सुनी
अपनी मसहरी में........
क्या
बस्ती की तबस्सुम
मर गई—....?
सुबह
बस्ती का कार कुन
फिर सुलगा रहा था
चूल्हा........
मैंने,
अपने प्रश्न
फेंक दिये उस पर

औ......झनाझन गिर गये

चूल्हे पे रखी

हँड़िया में

छूछा खदबुन

कुछ न बोला

चूल्हे में

साँप लोट करता रहा

हँड़िया की भाप

एकाएक

सुन्न धोखा गई

सपनों का अस्तित्व

उस जैसा था !

काला धुंआ

अनजान जिस्मों की
लावारिश ...लूहाशें
पटरियों को रंगती
खेतों में बिखर गईं
फुफकारता इंजन
पथिकों को खींचता
हुंफहुंफाता रूक गया
निर्लिप्त सा !
ब्यौरा घटना का
कुछ यों छपा
वे रोटी को खोजने
निकले थे
खेतों में बिखर कर
लहू बिखरा लौह पटरियों पे
अपना गन्तव्य
पागये !
डिब्बे सरक गये
बस्ती पे छितरा गया
काला धुंआ।

जीवन

अक्सर
नमक के डले
अटके गले में
और
वह निगल गया उन्हें
पानी के घूंट के साथ
दुखती आंखों पे रखे फाहों को
उड़ा ले गई हवा
देकर अपनी टीस
आंखो को
वह लेटा रहा
उनपे पलकें गिरा
सोखकर........
.... सब इस तरह
मुस्करा देता. ..रोते रोते
कोई गाये जैसे
आह जीवन... ....
ओह जीवन........

न चुप रहना मां....

मेंहदी रचे हाथ
लपटों में घिर गये
लाल चूनर ओढ़े तन
मीत ढूंढ़ता रहा
दर्पण में प्रतिबिंबित

कुंआरा मन
सुबकता रहा........
मिटता रहा

तिल तिल....घुटता रहा........
बाबुल ने पासे फेंके
हार गया.... ...मगर
जीत गया बाजी
चांदी का दलाल
परम्परा निबाह में
संस्कारी बेड़ी........
समझा नहीं बाबुल
चुप रही मां....चुप रही मां
रोये खूब
लिपट लिपट
........झुलसी हुई देह से
ठगासा बाबुल....बेवस सी मां

कहती रही........

चीख चीख

सुलगती चिता...... .

अबकी बार

हरगिज, न चुप रहना

मां........

न चुप रहना मां !

अनुराग प्रयत्न

तुम्हें, सौंपे जाने से पहले
(हाड़....मांस की देह भर जो थी मैं...)
शायद
बहती नदिया थी मैं
कव कल....करती
जीवन के प्रति
अनुराग भरी !
मेरा सौंपा जाना ही
दुर्भाग्य था
प्रथा में बंधा....उलझा
युग से चली आ रही
नियत सा !
नदिया का पानी
थम गया
तुम्हारे द्वार पर आकर !
और....बेरहम पांव
उस पर
छपछपाते रहे
जल कुम्भी सा फैलकर
ढक लिया तुमने
थमे पानी के अस्तित्व को
भूल गये
कि, तुम्हारा जन्म

मुझ से ही हुआ था
यद्यपि
अब मेरा अस्तित्व
नजर नहीं आता
मगर... ....
      अब, कठिन है
तुम्हारा, मुझ पर से
      गुजर जाना
पावों को छपछपाते हुए
....

अनुराग....प्रयत्न
जीवन के प्रति
मरा नही है !

सन्नाटे में सत्य

अन्धकूप सा गहरा है
भीतर का सन्नाटा
कभी तुम
फेंक देते हो
सनसनाता पत्थर
सन्नाटे में फेंके
पत्थर की प्रतिध्वनि
क्षण भर को
मेरे
चेहरे पर
प्रतिबिंबित हो जाती है
चेहरा........जो पहले
मेरा नहीं रहा होता
क्षण भर को मेरा हो जाता है
सत्य
पल भर के लिये रूककर
फिसल जाता है
उसी सन्नाटे में
तुम............
फेंकते रहो सनसनाते पत्थर
कि
फिसले सत्य को
कभी पकड़ सकूं

राह

शहर में बेटा
ऊँचे ओहदे पर पहुंचा है
गांव में खबर
बाबा ने पहना है
केसरिया साफा
कलफ लगा कुर्त्ता
किनारी की सफेद धोती
मां ने गवायें हैं....
मंगल गीत ।
....कुर्त्ता....साफा....धोती
फिर पहुंच गये
उदास जंग लगे
ढड्डर बकसे में
गीत घिर गये
अमावस की रात में
बाबा की मौत पर
फिर आया टेलिग्राम
संवेदना का !
बाबा की आंखों में
सो गयी थककर
राह तकतीं
गांव की पगडंडी
द्वार खुला छोड़कर !

हथेली

मेरे सामने है
एक मैली
हथेली
मैदान सी
व्यापक
शैल सी कठोर
जो—
पाषाण तोड़कर
बना सकती है
ऊँची
अट्टालिकाएं
बैंकों के सेफ
रेलों के चिंघाड़ते
इंजिन, मशीनें
और........बालकनी में
चढ़कर........छठी मंजिल से
झोपड़ी के बौने पन पर
मुंह बिचकाते तुम।
हैरान हूँ मैं........
कि
इतनी बड़ी हथेली
झोंपड़ी में
क्यों समा गई।

युद्ध

रात........
सर्द कटार
उसके सीने में
उतर जाती है
चिरता हृदय........
फैली आंखें
बेबस देह !
और
देह की बन्द चमड़ी में
घुमड़ते आंसू
....
ये सब
हर रोज होते
युद्ध के बाद की
बात है............
युद्ध
रोटी का
महायुद्ध !

स्वप्न के बाद

वहां रोज, बाप बेटे पर गुर्राता था
बेरोजगार बेटा
बाप की गरदन दबोचने की फिराक में
उंगलियां चबाता था
भाई भाई में कलह होती
पाई पाई ....को
मां .. बेटी जीर्ण धोती में
आंसू ढरकाती....पेट की आग पर
चख....चख चिख चिख
....दांता किट किट
एक रात स्वप्न में उन्होंने
नये वस्त्र पहने
भरपेट दाल भात खाये
शीतल बिछौने पर
लेटे....गुनगुनाये
ताक....धिना धिन
तक धिन....तक धिन
कैसे मीठे....पल छिन....पल छिन
सुबह, वे सब अवाक थे
एक दूजे से इतना
प्यार करने पर !
कि,

वाज फिर उड़ता नजर आया आसमान में

रोटी को

चोंच में दबाये

रोटी की डोर

उनके आंगन में लटकी थी....

और, वे, फिर

गुत्थम....गुत्था हो गये

भौ ...भौ गुर गुर

खौ....खौ दुर दुर

छोटा बच्चा

मचल गया....इस बीच

मां... मुझे वाज चाहिये

वस... ....वही चाहिये

लूंगा... वही लूंगा मैं तो

उं हूँ....हूँ....हू....इ....

ठुन....ठुन....ठुन ठुन....

सफेद वस्त्र से पहचान

पत्र विहीन....सूखा पेड़
हर शाख में छिपा
यातना इतिहास
ओढ़े खड़ा है
सदा से
एक सफेद झीना वस्त्र
जो, तुम्हें नहीं दीखता
तुम आदि हो
उसे नंगा देखने के
उस पर पड़े काले खुरंट
तुम्हें रोजमर्रा की
छोटी छोटी घटनाएं लगती हैं
उसका, पत्र विहीन होता
सूखा जाना भी
वैज्ञानिक प्रक्रिया सा ही
लगता है
लेकिन, कभी कभी
पलभर को ही सही
तुम सोचते हो
ये पेड़
फिर भी खड़ा है
ख....ड़ा....है।
और—
सफेद वस्त्र से पहचान
पल भर को ही सही
तुम्हें....तुमसे
मिला जाती है।

कई हठ
जोंक का निरट जाता है
मन से
कि
मिट चुके, दंश का
निशान
फिर नीला हो जाता है
तन पे.........
मन बातें करता है
फिर "मैं" से
कि—
पेड़ पे टंगी लाश को
कंधों पे उतार लेता है
अनायास हाथ
और.......
शरीर चलता रहता है
यूं ही.......
चुपचाप....चुपचाप

विडम्बना

विजूके की तरह
तुम्हें कौन खड़ा कर गया
मेरे गेहूँ के खेत में
कि—
एक चिड़िया ने
ढक लिया मेरे अस्तित्व को
छोड़ गया........
खेत को
और अब
अनल पक्ष बना
मंडराता है
चिमनियों से निकले काले धुंए में

प्रयत्न

तुम्हारे और मेरे
बीच........
एक कुण्ड
चुपचाप बनता चला गया
....
हमारे जिस्मों से
ढरका पानी
कुण्ड में थमता रहा
....
जब........जब
प्रयत्न किया
एक होने का
थमे पानी की कीच
राह पे फैल गई
और.........
ढक लिया
उसको बू ने, मनको ।
कीच सने पांवों को ले
हम मुड़ गये
दो........विपरीत
दिशाओं को
धोते रहे........
पांवों को........
जिस्म को........
और........पानी
अनायास गिरता रहा
कुण्ड में ।

उत्तर की खोज

वृत्त पे
अंकित किये
निश्चिन्त बिन्दुओं से
एक कांटे की तरह
वह हर रोज
गुजरता है
....
कांटे की नोक
बींधती है... ....
बिन्दुओं पे टकी
हथेली से अलग
सुर्ख उंगलियों को
एक नियम की तरह
और... ...
वृत्त का खाली भाग
जिसपे मंडराती है
कांटे की छाया
भर जाता है........
कभी आक्रोश से
कभी छोड़ देता है
जबड़ों को ढीला
क्या....... सोचकर
क्या .. ....सोचकर
कि—
दोनों ही स्थितियां
स्थिर नहीं है ?

एक और प्रश्न

नारी... ....
ओ ! श्रमिक नारी
अब तुमने जिन्दगी का
पचासवां साल पार कर लिया है
एक प्रश्न है मेरा........
निहायत सीधा, सपाट सा
तुम्हारे गले में लटके
अधमरे कबूतरों की संख्या
जिन्हें तुमने यातना से
तड़पता देख........
कभी उठा लिया था
तुम्हारे गले में लटके
प्रीत के धागे में
जो मेहनत की खरोंचे खा खा कर भी
नहीं........टूटा था
वे एक एक कर लटकते गए
वे ठीक तो हो ही नहीं सकते थे
ये तुम जानती थीं
अब...........
अब उनकी संख्या
कितनी हो गई है

नन्हीं लड़की

नन्हीं लड़की
बायें हाथ से
कुतरती है रोटी का टुकड़ा
पकड़ती है गिलास, उठाती है कलम
और, हम चौंककर
झपट देते हैं उसे
दुलार कर, मार कर किसी भी तरह
रोक देते हैं उसे
उसका इस तरह खाना-पीना
और उठाना कलम का
यूं, जमा हो जाता है आधे अंग में
एक ठस्स बासीपन, लाइलाज अधरंग
शेष अंग जब कभी बनता है
अर्धांग किसी का
जो हो सकता है सपनों का दलाल
चांदी मढ़े भेड़िए के जबड़े को
गालों में छिपाये
तब उस नन्हीं लड़की का अस्तित्व
कहीं नहीं रहता
मैं, कहती हूं मत रोको
उसका बायें हाथ से खाना-पीना
और, उठाना कलम का
ताकि जीवित रहे उसका आधा अंग

सुराग....बांबी का

जब से पैदा हुई
बालू के गर्म टीले पर
नंगे पांव खेली है
जनम जली........

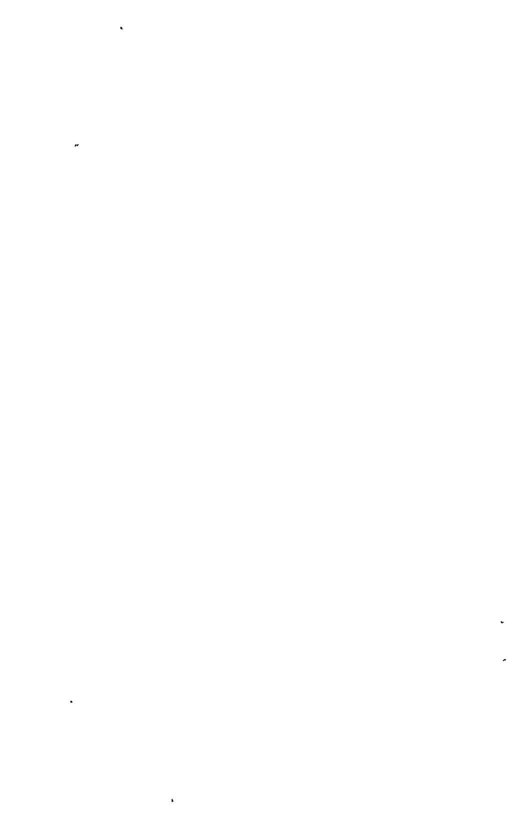
टीले पर
नन्हें घरौंदे, हाथों से थपक कर
झिम झिम बूंदो संग
कच्च हरी पत्तियों से ढककर
सोची है बावली

जब से ब्याह कर आई है
किसी भी
काली रात में
टीले को फाड़कर निकला
........पीवणा सांप
छाती पर
पूंछ फटकारता निकल जाता है
सदा सुहागन........
बनी तह
दरकती है
हर काली रात
ऐसे दर्द से

अमावस से अमावस के बीच
उसकी आंखें
कच्च हरी पत्तियों से ढके
घरोंदे को पलकों में लिये
छलकती हैं........
उम्र के तीसरे पड़ाव पर
बेटो जवान
करमजलो रांड
और वह
दे सकती है
पोवणे सांप की
बांवो का सुराग
वालू पे उभरी
लकीरों को पढ़कर

तपते रेत में खेजड़ी

जब हर कोई धोखा दे जाता है
मौसम........बादल
सिंचाई परियोजनायें........
दूर दूर तक फैले
सूखे........तपते रेत में
फिर भी........
लूंग बिखेरता है
खेजड़ी का पेड़।
भूख से अधमरे
ऊँट........
भेड़........
बकरियों के लिए
काश !
एक खेजड़ी का पेड़
देश की रहनुमाई में........
उग आये !





नाम : साधना चौधरी

जन्म : 26 अगस्त, 1957

जन्म स्थान : साही (आगरा)

शिक्षा : बी. एस. सी.,
एम.ए. (प्री.) हिन्दी/समाज शास्त्र,
पत्रकारिता में डिप्लोमा

पुरस्कार : वर्तोल श्रेस्त पुरस्कार कविताओं
के लिए।

प्रकाशन : विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं यथा
कादम्बिनी, साप्ताहिक हिन्दुस्तान,
साक्षात्कार, सहेली, नवभारतटाइम्स
आदि आदि

प्रसारण : दूरदर्शन एवं आकाशवाणी से
कविता एवं कहानियाँ प्रसारित।

सम्पर्क : द्वारा श्री ओउम् प्रकाश चौधरी,
परियोजना अधिकारी, राजकीय
डेयरी, मालपुरा (टोंक) राजस्थान